e-ISSN:2582 - 7219

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH IN SCIENCE, ENGINEERING AND TECHNOLOGY

Volume 4, Issue 9, September 2021

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 5.928

International Journal Of Multidisciplinary Research In Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

छापाकला का इतिहास- भारत के संदर्भ में

Geetam Pradhan

Assistant Professor, M.G.R. College, Anta (Baran), Rajasthan, India

सार

छपाई एक कलाकृति है। यह प्रारंभिक चित्र के समान प्रकार में लगभग विविधता की अनुमति देती है। भारत में छपाई का इतिहास 1556 से शुरू होता है। इस युग में गोवा में पुर्तगालियों ने छपाई की मशीन लगाई। अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देखने पर यह ज्ञात होता है कि कला की यह विधा ग्यूटेर्नबर्ग की बाइबल की एक शताब्दी बाद भारत में आई। प्रसिद्ध कालाकार थोमस डैनियल (1749-1840) तथा विलियम डैनियल (1769-1837) ने ओरियन्टल सिनरी शीर्षक से कलमकारी की 6 श्रृंखलाओं को प्रस्तुत किया। 1786 में डैनियल ने ट्वेल्व व्यूज ऑफ कलकत्ता शीर्षक वाले एक रंग की कालमकारी का एलबम प्रकाशित किया। यह पहला मौका था जब भारत में लिथोग्राफी एक ही कागज पर छपाई की संभावना की तलाश की गई। 1822 में फ्रांसीसी कलाकार डी. सैविगनैक ने एक ही कागज पर लिथोग्राफी रूप में छपाई की। 1870 के दशक में कैलेन्डर, पुस्तक तथा अन्य प्रकाशनों के लिए छपी हुई तस्वीरों की मांग बढ़ी। इसके परिणाम स्वरूप एक ही कागज परछपाई की लोकप्रियता बढ़ी। आगे पूरे भारत में अनेक आर्ट स्टूडियो तथा छापेखाने तैयार हुए। कोलकाता के शोवा बाजार और चितपुर बट-ताला को 19वीं शताब्दी के प्रमुख छपाई केंद्र के रूप में देखा गया। मुंशी नवल किशोर ने 1858 में लखनऊ में नवल किशोर प्रेस तथा बुक डिपो की स्थापना की। इसे एशिया में सबसे पुराने छपाई और प्रकशन प्रतिष्ठान के रूप में मान्यता मिली और यहीं स्टोनब्लॉक के साथ अखबार और किताबों की छपाई होने लगी। इसके अतिरिक्त 19वीं शताब्दी के अंत में राजा रवि वर्मा ने मुंबई केघाटकोपर में लिथोग्राफी प्रेस स्थापित किया। रवि वर्मा के प्रेस को प्रसिद्धि मिली और उनके अनेक धार्मिक और धर्म निस्पेक्ष चित्रों की कॉपियों तैयार हुई और आम जनता के लिए तैल चित्र रूप में इनकी छपाई हुई। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में अबनींद्रनाथ टैगोर, गगनेंद्रनाथ टैगोर तथा समरेंद्रनाथ टैगोर द्वारा छपाई को सृजनात्मक माध्यम का रूप दिया गया। इन तीनों ने सामूहिक रूप से बिचित्र क्लब की स्थापना की ताकि कटी हुई लकड़ी तथा कटे हुए पत्थरों से चित्रकारी और छपाई हो सके। इस क्लब के एक अन्य प्रमुख व्यक्ति थे मुकुलचंद्र डे,जिन्हें 1916 में रवींद्रनाथ टैगोर ने जेम्स ब्लाइंडिंग स्लोन से नक्काशी तकनीक सीखने के लिए अमेरिका भेजा। 1921 में शांति निकेतन में नंदलाल बोस ने कला भवन की स्थापना की। इसके साथ भारत में छपाई कला लोकप्रिय हुई। 1924 में चीन और जापान की यात्रा से वह चीनी घिसाई तथा जापानी रंग वाली लकड़ी से छपाई का माध्यम लेकर आए। इस कारण कला भवन के विद्यार्थियों ने सुदूर पूर्व की मौलिक छपाई के साथ सीधा संपर्क स्थापित किया। 1930 से 40 के बीच बिनोदबिहारी मुखर्जी तथा रामकिंकर बैज ने इस माध्यम का उपयोग किया। चित्तप्रसाद तथा सोमनाथ होर ने वामपंथी विचारों, सुधारवादी विषयों तथा 1943 केबंगाल अकाल और तेभाग आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक-आर्थिक आलोचनाओं का प्रसार लाइनोकट तथा वुडकट के इस्तेमाल से किया। सोमनाथ होर 1979 में शांति निकेतन के ग्राफिक आर्ट विभाग के अध्यक्ष बने। सनत कार, लालू प्रसाद शॉ, पुलक दत्त, निर्मलेंदू दास, अजित सियाल और सलिल साहनी जैसे विशेषज्ञों ने शांति निकेतन के इस विभाग को बाद के वर्षों में समृद्ध बनाया। इसी तरह दिल्ली में जगमोहन चोपड़ा, (ग्रुप 8 के संस्थापक)जय स्वामीनाथन अनुपम सुध, परमजीत सिंह, मंजीत बाबा तथा कृष्ण आहूजाने योगदान दिया। 1955 में कमलकृष्ण तथादेवयानी कृष्ण द्वारा छापेखाने लगाने से दिल्ली में नई ऊर्जाका संचार हुआ और बहुरंगी इंटेग्लियों तथा कॉलेग्राफी की तकनीक आई। विलियम हेटर (एटीलियर 17 के संस्थापक) तथा कृष्णा रेड्डी के मार्ग निर्देशन में अनेक युवा बहुरंगी इंटेग्लियों तकनीक सीखने पेरिस गए। के. जी. सुब्रह्मण्यम ने अपनी कला में लिथोग्राफी, कलमकारी और सेरीग्राफी को शामिल किया। महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय बड़ोदरा के शिक्षक के रूप में उन्होंने बच्चों की पुस्तकों की व्याख्या में इन विधाओं का उपयोग किया। इस क्षेत्र में एम बी जोगलेकर,ज्योतिभट्टजयराम पटेल, शांति दबे, वी. आर. पटेल तथा पीडीधूमल जैसे प्रमुख कलाकारों ने योगदान दिया। इटली तथा न्यूयॉर्क के प्रैट ग्राफिक सेंटर में अध्ययन के बाद 1960 में ज्योतिभट्ट बडोदरा के कलासंकाय में शामिल हुए और विजुअल अभिव्यक्ति के क्षेत्र में युवाओं को प्रोत्साहित किया। 1970 से लक्ष्मा गौड़, देवराज डाकोजीतथा डीएलएन रेड्डी ने हैदराबाद, आरएम पलनियप्पन तथा आरपी भास्करण ने चेन्नई में तथा चित्त प्रसाद भट्टाचार्य अतिन बसाक में तथा अमिताभ बनर्जी ने कोलकाता में इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण छाप छोड़े। इंटैग्लियोतकनीक ने चित्रकारों तथा शिल्पकारों को प्रभावित किया। इनमें दत्तात्रेय आपटे, नैना दलाल, जयंत पारीख, विजय बगोडी, वाल्टर डिशूजा प्रमुख हैं। अहमादाबद में रॉबर्ट राउसनबर्ग तथा नई दिल्ली के एनजीएमए की छपाई संग्रह से पूरी दुनिया में अपनाए गए विभिन्न व्यवहारों की छाप दिखाई दी। 1990 के दशक में भारतीय प्रिंट मेकर्स गिल्ड की स्थापना के साथ आशा की नई किरण जगी। गिल्ड के सदस्यों में आनंदमय बनर्जी, दत्तात्रेय आप्टे,जयंतगजेरा, के. आर. सुबन्ना, बुलाभट्टाचार्य, कविता नायर, कंचन चंदर, मोती झरोटिया, सुशांत गुहा, सुखविंदर सिंह,

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

सुब्बाघोस तथा शुक्लसावंत शामिल हैं। छपाई के क्षेत्र में डिजीटल टेक्नोलॉजी तथा मेकेनाईज्ड सॉफ्वेटर के आगमन से क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। प्रायोगिक तौर पर इसमें विजुअल शब्दावली आई जिसे ज्योतिभट्ट, नटराज शर्मा, रविकाशी, गुलमोहम्मद शेख, रणवीर कलेका, वैजू परथन, पुष्पमाला एन, अकबर पद्माजी, रामेश्वर ब्रुटा तथा गोगी सरोजपाल ने तैयार किया।

परिचय

जीवन ऊर्जा का महासागर है और जब इसमें चेतना जागृत होती है, तो ऊर्जा जीवन को कला के रुप में उभारती है, और कला के माध्यम से ही व्यक्ति द्वारा मानवीय भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। ऐसे ही प्रिंटमेकिंग (Printmaking) एक ऐसी ही कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसकी जड़ें सिंधु घाटी सभ्यता से जुड़ी हुई हैं। कला के रूप में इसका ऐतिहासिक विकास काफी दिलचस्प है। कलात्मक अभिव्यक्ति का यह माध्यम मुख्य रूप से जन संचार या प्रलेखन के साधन के रूप में उपयोग किया जाता था। हालांकि, यह सबूत पाये गये हैं कि सिंधु घाटी सभ्यता के समय तक भारत में बड़े पैमाने पर दोहराव की अवधारणा का उपयोग किया गया था। [1,2] उदाहरण के लिए जमीन के अनुदान, तांबे की प्लेटों पर जानकारी उत्कीर्ण करके और लकड़ी, हड्डी, हाथी दांत जैसी विभिन्न सतहों पर नक्काशी करके मूल रूप से दर्ज कर उस समय के एक महत्वपूर्ण शिल्प के रूप में प्रलेखित किए गए थे। समकालीन प्रिंटमेकिंग गुटेनबर्ग (Gutenberg) की बाइबल (Bible) को छापने के लगभग सौ साल बाद 1556 में भारत आयी। इस समय, प्रिंटमेकिंग का उपयोग केवल नकल करने और सामग्री को पुन: पेश करने के लिए एक उपकरण के रूप में किया गया था।

रंगाई-छपाई कला राजस्थान की प्रसिद्ध हस्तकलाओं में से एक है।

अजरक प्रिंट

- बाड़मेर का अजरक प्रिंट प्रसिद्ध है।
- इस प्रिंट में लाल और नीले रंग का प्रयोग किया जाता है।
- खत्री जाति इस कार्य को करने के लिए प्रसिद्ध है।

मलीर प्रिंट

- मलीर प्रिंट बाड़मेर का प्रसिद्ध है।
- कत्थई रंग का प्रयोग किया जाता है।

जाजम / आजम प्रिंट

- इस प्रिंट के लिए छिंपो का अकौला (चित्तौड़गढ) प्रसिद्ध है।

दाबू प्रिंट

- मोम का दाबू सवाई माधोपुर का प्रसिद्ध है।
- गेहूं का दाबू (सांगानेर व बगरू) जयपुर का प्रसिद्ध है।
- मिट्टी का दाबू बालोतरा (बाड़मेर) का प्रसिद्ध है।

सांगानेरी प्रिंट

- यह प्रिंट सांगानेर (जयपुर) का प्रसिद्ध है।
- सांगानेरी प्रिंट बेल-बूटों की छपाई के लिए प्रसिद्ध है।
- इस छपाई में प्रसिद्ध बेल दाखा बेल है।[3,4]

बगरू प्रिंट

-

- यह प्रिंट बगरू (जयपुर) का प्रसिद्ध है।
- इस प्रिंट में काले रंग की प्रधानता हैं।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

मैण छपाई

- मैण छपाई सवाई माधोपुर की प्रसिद्ध है।

टुकड़ी प्रिंट

- टुकडी प्रिंट जालौर की प्रसिद्ध है।

तबक की छपाई

- इस छपाई में मोम मिश्रित मिट्टी का प्रयोग किया जाता है।
- जयपुर और उदयपुर की तबक की छपाई प्रसिद्ध है।
- किशनगढ़, चित्तौड़गढ़ व कोटा में रूपहली व सुनहरी छपरी कार्य किया जाता है।[5,6]

साथ ही वुडब्लॉक (Woodblock) चित्रण का मुख्य रूप से उपयोग बाइबल प्रिंटिंग (Bible printing), पोस्टर (Posters), प्लेइंग कार्ड (Playing cards), मैनिफ़ेस्टो (Manifestos) और बुक कवर (Book covers) में किया जाता था। यह छवियों या पाठ को पुन: प्रस्तुत करने जैसा था। पिछले 90 वर्षों में, प्रिंटमेकिंग दृश्य कला के एक माध्यम के रूप में विकसित हुई। वर्तमान समय में भी कई लोग इसमें रूचि रखते हैं, कला के इस रूप के साथ, आप केवल एक डिज़ाइन (Design) ही नहीं बना सकते बल्कि एक दृष्टिकोण भी बना सकते हैं, जो बाकियों से पूरी तरह से भिन्न है। आमतौर पर कई लोगों द्वारा प्रिंटमेकिंग और प्रिंटिंग (Printing) को कभी-कभी एक सा मान लिया जाता है, लेकिन वास्तव में इन दोनों में बहुत अंतर है। प्रिंटिंग, मुद्रणालय की तकनीक के माध्यम से मुद्रित सामग्री के उत्पादन की प्रक्रिया है जबकि प्रिंटमेकिंग आमतौर पर कागज, कपड़े आदि पर छपाई द्वारा कलाकृतियां बनाने की प्रक्रिया है। प्रिंटमेकिंग में मूल रूप से एक सांचे (यह अनिवार्य रूप से एक टेम्पलेट (Template) होता है, और इसे लकड़ी, धातु या कांच से बनाया जा सकता है।) के माध्यम से छवियों को किसी अन्य सतह (मुख्यतः कागज या कपड़े) पर स्थानांतरित किया जाता है। वहीं पारंपरिक प्रिंटमेकिंग तकनीकों में लकड़ी के साँचे, नक़्क़ाशी, उत्कीर्णन और पाषाणलेखन शामिल हैं, जबकि आधुनिक कलाकारों ने स्क्रीन-प्रिंटिंग (Screen Printing) को शामिल करने के लिए उपलब्ध तकनीकों का विस्तार किया है। उपकरणों या रसायनों के साथ सांचे की सपाट सतह पर काम करके डिज़ाइन को सांचे पर बनाया जाता है। वांछित सतह पर इसे स्थानांतरित करने के लिए सांचे पर स्याही लगाई जाती है। सांचे से प्रिंट करने के लिए नियंत्रित दबाव के अनुप्रयोग की आवश्यकता होती है, जिसे अक्सर प्रिंटिंग प्रेस का उपयोग करके हासिल किया जाता है, जो कागज या कपड़े पर मुद्रित होने पर डिजाइन का एक समान प्रभाव पैदा करता है (अधिक आधुनिक प्रिंटमेकिंग तकनीक, जैसे स्क्रीन-प्रिन्टिंग, को एक प्रेस की आवश्यकता नहीं होती है)। परिणामस्वरूप प्राप्त प्रिंट अक्सर सांचे पर मूल डिजाइन की दर्पण छवि होती है। प्रिंटमेकिंग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि एक ही डिज़ाइन के कई प्रभाव एकल सांचे से प्रिंट किए जा सकते हैं।

प्रिंटमेकिंग तकनीकों को आमतौर पर निम्नलिखित मूल श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

रिलीफ (Relief) :

इसमें स्याही, सांचे की मूल सतह पर लगाई जाती है। इस तकनीक में वुडकट या वुड ब्लॉक (Block) शामिल हैं जैसा कि इन्हें एशियाई रूपों में आमतौर पर लकड़ी के उत्कीर्णन, लीनोकट (Linocut) और मेटलकट (Metalcut) के नाम से जाना जाता है।

इंटाग्लियो (Intaglio):

इसमें स्याही को सांचे की मूल सतह के नीचे लगाया जाता है। इंटाग्लियो (Intaglio) तकनीक में उत्कीर्णन, नक़्क़ाशी, मेज़ोटिन्ट (Mezzotint), एक्वाटिंट (Aquatint) शामिल हैं।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

प्लानोग्राफिक (Planographic) :

इस विधि में सांचा अपनी मूल सतह को बनाए रखता है, लेकिन छवि के हस्तांतरण के लिए अनुमति देने के लिए विशेष रूप से तैयार स्याही का उपयोग किया जाता है। इसमें लिथोग्राफी (Lithography), मोनोटाइपिंग (Monotyping) और डिजिटल (Digital) तकनीक शामिल हैं।[6]

स्टेंसिल (Stencil) :

इसमें स्याही या पेंट (Paint) को तैयार स्क्रीन के माध्यम से दबाया जाता है, जिसमें स्क्रीन प्रिंटिंग और पॉचोइर (Pochoir) शामिल हैं।

वुडकट (एक प्रकार का रिलीफ प्रिंट) सबसे शुरुआती प्रिंटमेकिंग तकनीक है, और सुदूर पूर्व में पारंपरिक रूप से उपयोग की जाती है। इसे संभवतः कपड़े पर मुद्रण पैटर्न (Pattern) के साधन के रूप में विकसित किया गया था, और 5वीं शताब्दी तक चीन में कागज पर किसी विषय और चित्र छपाई के लिए इसका उपयोग किया जाता था। जापान में 1400 के आसपास कागज पर छवियों के वुडकट विकसित हुए और यह कुछ ही समय बाद यूरोप में भी उपयोग किए जाने लगे। कलाकार द्वारा लकड़ी के तख़्त पर या कागज पर एक डिज़ाइन बनाया जाता है, जिसे लकड़ी में स्थानांतरित किया जाता है।

विचार-विमर्श

इसी प्रकार प्रिंटमेकिंग की नक़्क़ाशी तकनीक इंटाग्लियो परिवार का हिस्सा है तथा माना जाता है कि इस प्रक्रिया का आविष्कार जर्मनी के ऑग्सबर्ग (Augsburg) के डैनियल होफर (Daniel Hofer) (1470–1536) ने किया था, जिन्होंने कवच को इस तरीके से सजाया और उसमें प्रिंटमेकिंग की विधि लागू कर दिया। इस तकनीक का फायदा यह था कि ड्राइंग (Drawing) में प्रशिक्षित कलाकार के लिए इसे सीखना आसान है। नक़्क़ाशीदार प्रिंट आमतौर पर रैखिक होते हैं और अक्सर इसमें बारीक विवरण और आकृति होती है। प्रिंटमेकिंग की लिथोग्राफी तकनीक का आविष्कार 1798 में एलो सिनफेल्डर (Alois Senefelder) द्वारा किया गया था और यह तेल और पानी के रासायनिक प्रतिकर्षण पर आधारित है। इसमें एक छिद्रपूर्ण सतह, आमतौर पर चूना पत्थर का उपयोग किया जाता है। छवि को तेलीय माध्यम के साथ चूना पत्थर पर रेखांकित किया जाता है। चूना-संरक्षित डिजाइन को चूना पत्थर में स्थानांतरित करते हुए, अम्ल का इस्तेमाल किया जाता है, जिसके बाद छवि को सतह में जलता हुआ छोड़ दिया जाता है। इसके बाद इस पर पानी में घुलनशील पदार्थ 'गम अरेबिक (Gum Arabic)' का इस्तेमाल कर पत्थर की सतह को सील (Seal) कर दिया जाता है। पत्थर की सतह पर केवल पानी रहता है तथा यह चित्रकारी के तेल आधारित अवशेषों में शामिल नहीं होता। इसके बाद तेल की स्याही को पूरी सतह को आवरित करने वाले रोलर (Roller) के साथ लगाया जाता है। चूँकि पानी स्याही में तेल को पीछे धकेलता है, इसलिए स्याही छवि को रंजित करते हुए केवल तेलमय भाग पर चिपकती है। सूखी कागज की एक पर्ण को सतह पर रखा जाता है, और फिर प्रिंटिंग प्रेस के दबाव से छवि को कागज में स्थानांतरित किया जाता है। लिथोग्राफी को छायांकन और बहुत छोटे विवरण में महीन वर्गीकरण को ग्रहण करने की क्षमता के लिए जाना जाता है। इसी प्रकार से उत्कीर्णन की प्रक्रिया को जर्मनी में 1430 के दशक में सुनार द्वारा इस्तेमाल की गई नक्काशी से विकसित किया गया था। इसमें कठोर लोह उपकरण जिसे बरिन (Burin) कहा जाता है, का उपयोग एक धातु प्लेट (Plate) की सतह में डिज़ाइन को काटने के लिए किया जाता है।

कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक साधन के रूप में प्रिंटमेकिंग, जैसा कि आज मान्यता प्राप्त है, भारत में 80 साल पहले उभरा। गैस्पर डी लियो (Gaspar de Leo) द्वारा क्रिश्चियन लाइफ का आध्यात्मिक संग्रह (Spiritual Compendium of Christian Life), 1561 में गोवा में छपा था।[7] इस पुस्तक को भारत में सबसे पुराने जीवित मुद्रित संकलन के रूप में दर्ज किया गया है। पारंपरिक द्वार या प्रवेश द्वार की एक छवि का चित्रण वुडब्लॉक की सहायक तकनीक का उपयोग करके करी गई थी। इंटाग्लियो प्रिंटिंग की प्रक्रिया भारत में डेनिश मिशनरी, बार्थोलोमेव ज़ेगेनबल्ग (Danish missionary, Bartholomew Zegenbalg) द्वारा शुरू की गई थी। उन्होंने द एवेंजेलिस्ट्स एंड द एक्ट्स ऑफ द एपॉस्टल्स (The Evangelists and the Acts of The Apostles,) नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की जो कि ट्रानकेबर (Tranquebar- तमिलनाडु में एक जिला, जो उस समय डेनमार्क का उपनिवेश था) में छपी थी। इस पुस्तक के शुरुआती पृष्ठ में भूरे रंग की छाया में एक नक़्क़ाशी छापी गई थी। यह भारत में रंग मुद्रण के पहले दर्ज उदाहरणों में से एक बनी। ज़ेगेनबल्ग की एक अन्य पुस्तक ग्रामटिका डामुलिका (Gramatica Damulica), प्लेट उत्कीर्णन का सबसे पहला उदाहरण प्रदर्शित करती है। एक प्रारम्भिक मुद्रित चित्रण (वुड ब्लॉक प्रिंट), 1806 में तंजौर में छपी बालबोध मुक्तावाली नामक पुस्तक में पायी जा सकती है।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

हालाँकि, एक भारतीय कलाकार द्वारा छापे गए चित्रण का पहला उदाहरण बंगाली पुस्तक ओनूदाह मोंगल (Annada Mangal) का हिस्सा था। यह पुस्तक गंगा किशोर भट्टाचार्य द्वारा प्रकाशित की गई थी और 1816 में कलकत्ता के फेरिस एंड कंपनी (Ferris & Company) प्रेस में छपी थी। इस पुस्तक में अभिलेखों के साथ दो उत्कीर्ण चित्र हैं। कलकत्ता में इंटाग्लियो प्रिंट के प्रकाशनों का अध्ययन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि इंटाग्लियो प्रिंट प्रेस 1780 के दशक तक शहर में अच्छी तरह से स्थापित हो गए थे। कोलकाता में बटाला 19वीं शताब्दी में भारतीय प्रिंटमेकिंग गतिविधियों का केंद्र था। वहीं राजा रवि वर्मा भारत के पहले कलाकार थे जिन्होंने प्रिंटमेकिंग का इस्तेमाल किया, न केवल अपने आप में एक कलात्मक माध्यम के रूप में, बल्कि अपनी कला को जन-जन तक पहुँचाने के लिए। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, उन्होंने 19वीं शताब्दी के अंत में अपना स्वयं का लिथोग्राफिक प्रेस स्थापित किया, जिसे बॉम्बे के घाटकोपर में रवि वर्मा प्रेस के नाम से जाना जाता था। यहाँ उन्होंने अपने कई धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष चित्रों की नकल की और उन्हें चमकदार आत्मकथाओं के रूप में छापा। 1919 में टैगोर द्वारा स्थापित कला भवन की स्थापना के साथ ललित कला माध्यम के रूप में प्रिंटमेकिंग की प्रथा ने अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की। भारत में प्रिंटमेकिंग को एक कला के रूप में पोषण प्रदान करने का श्रेय बंगाल के प्रसिद्ध कलाकार सोमनाथ होरे को जाता है, जिन्होंने कृष्ण रेड्डी, जैसे एक अग्रणी प्रिंटमेकर से मार्गदर्शन प्राप्त किया था। होर प्रिंट्स के साथ अपने प्रयोगों के लिए जाने जाते थे। प्रिंट कला को आगे ले जाने वाले सनत कर थे, जिन्होंने कला को गैर-पारंपरिक रूपों से उठाया और इंटाग्लियो प्रिंट बनाने के साथ प्रयोग किया। इनके अलावा कंवल कृष्ण एक अन्य प्रसिद्ध कलाकार थे, जिन्होंने अपने प्रिंट्स को चमकदार रंगों, उभरी हुई सतहों और एक विशेष आकर्षण के साथ उभारकर हलचल मचा दी। यूरोप जाकर उन्होंने इंटाग्लियो प्रिंटिंग तकनीक सीखी तथा वापस आकर अपना प्रेस स्थापित किया और प्रिंटों में बहु-रंग होने का चलन शुरू किया।

केजी सुब्रमण्यन जैसे जाने-माने वरिष्ठ कलाकारों के पास प्रसिद्ध कला संस्थान शांतिनिकेतन में लिथोग्राफिक प्रिंट और फोलियो (Folio) के विशिष्ट निकाय हैं। के जी सुब्रमण्यम द्वारा प्रशिक्षित एक अन्य कलाकार लक्ष्मण गौड़ हैं, जिन्होंने प्रिंटमेकिंग को भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय कला प्रेमियों तक ले जाने में उत्कृष्ट योगदान दिया है। इसी प्रकार से अनेक भारतीय कलाकारों और उनके चित्रों ने भारत में कला के रूप में प्रिंटमेकिंग को प्रोत्साहित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हाल के वर्षों में, कंप्यूटर ग्राफिक्स (Computer Graphics), विभिन्न सॉफ्टवेयर प्रोग्राम (Software Programs), स्कैनर (Scanners) और प्रिंटर के आगमन के साथ, प्रिंटमेकिंग की धारणा प्रभावशाली रूप से बदल गई है। लोगों द्वारा शास्त्रीय हस्त निर्मित दृष्टिकोणों को अब पूरी तरह से स्वचालित रूप में बदल दिया गया है। कंप्यूटर पर बनाई गई छवियों के प्रिंट अब एक बटन के दबाने पर बनाए जा सकते हैं।[8]

परिणाम

उम्दा छापा चित्रकार आरके सरोज कुमार सिंह के अम्लांकन (एचिंग), शिलाछापा चित्र (लिथोग्राफी) और प्रिंट्स में उनका मणिपुर तैरता रहता था। विभिन्न गतिशील पशु आकृतियाँ, जलचर जीव, मोहक वनस्पतियां श्याम-श्वेत रेखाओं में उनके छापा चित्रों में सम्मोहक दृश्य प्रस्तुत करती थीं। यह उनकी नवीनतम कृतियां थी उनके 2008 के दौर की। यह सरोज सिंह की नयी छापा चित्र श्रृंखला थी। वे बहुत उत्साहित थे। सरोज सिंह मणिपुरी थे और लखनऊ राष्ट्रीय कला केन्द्र में छापा कला प्रशिक्षक (सुपरवाइजर) थे । मैं भी उस समय राष्ट्रीय ललित अकादमी के अलीगंज लखनऊ केन्द्र में चित्रकला कार्यशाला में अपना सृजन कर्म कर रही। कुछ दिनों से तनाव में थे। अचानक पता चला कि सरोज सिंह अस्पताल में हैं, उन्हें मस्तिष्क आघात हुआ है। मैं और श्याम ढूंढते-ढूंढते अस्पताल पहुंचते हैं तो पता चलता है, कि अस्पताल से उन्हें घर भेज दिया जाता है। वे लकवाग्रस्त हो जाते हैं। दरअसल बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान ही मुझे लखनऊ की कला गतिविधियों की जानकारी होती रही।

लखनऊ निवास करने के दौरान भी यहाँ की कला गतिविधियों से और भी ज्यादा साक्षात्कार होता है। लखनऊ की कला का वैभवशाली अतीत रहा है। परंतु वर्तमान समय में कला का पूरा माहौल बदल चुका है। इसका अहसास जब मैं बीएचयू में थी तभी हो गया था। लखनऊ तो केन्द्र था कला में राजनीति करने वाले कलाकारों का, कलाकार गुटों का। सरोज सिंह बेहद सरल थे। वे लखनऊ कला जगत की कुटिल राजनीति से दूर थे। कहा जाय तो उससे पीड़ित थे। यहाँ जिसका गुट सशक्त होगा उसका बोलबाला होगा। आप किसी गुट में नहीं हैं, मतलब 'दो पाटन के बीच में बाकी बचा ना कोय' । शायद यही हश्र हुआ था, एक संवेदनशील और बढ़िया कलाकार आरके सरोज सिंह का। इसका माने है आज कल कला गौण, कला अभिव्यक्ति गौण। जोड़-घटाव-गुणा महत्वपूर्ण है।

कई महत्वपूर्ण कला विथिकाएं हैं। लेकिन कला प्रेमी की उपस्थिति वहां गौण तो है ही साथ ही, कला के छात्र और नव कलाकारों के अंदर भी नवीन सृजन के अवलोकन की ललक नहीं है, प्रवृति नहीं है।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

सरोज सिंह का कला सौंदर्य बोध परिष्कृत था। तभी बड़ी गम्भीरता और निष्ठा से ललित कला अकादमी, लखनऊ छापा कला के कार्यशाला में युवा कलाकारों की मदद करते थे नये सृजन के रूपांतरण में। लखनऊ में 2006 में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी की कला विथिका में, मेरी पहली एकल प्रदर्शनी चल रही थी। इस प्रदर्शनी में सरोज जी ने मेरी पूरी मदद की थी। इस प्रदर्शनी में वरिष्ठ कवि शोभा सिंह, कवि लेखक श्याम कुलपत का भी विशेष योगदान था। सरोज सिंह लखनऊ में पहले कलाकार थे जिन्होंने मेरी चित्रों को देखकर खुश हो कर कहा, 'तुम वास्तव में चित्रकार हो'। हालांकि इस प्रदर्शनी में सभी लोग आये थे जैसे विख्यात छापा चित्रकार जयकृष्ण अग्रवाल, मूर्तिकार और पूर्व प्राचार्य , पटना कला एवं शिल्प महाविद्यालय के पाण्डेय सुरेन्द्र, मूर्तिकार पाण्डेय राजीव नयन, अवनिकान्त देव भूतपूर्व सचिव ललित कला अकादमी लखनऊ केन्द्र, बीना विद्यार्थी सचिव उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी मूर्तिकार कुमार धर्मेन्द्र, नीता कुमार आदि। लेकिन सरोज सिंह का वह कथन और मेरे चित्रों के प्रति उनकी सकरात्मक सोच ने भी मुझे प्रेरित किया कि लखनऊ को अपना सृजन कर्म स्थल बनाने को।[1]

जैसा कि मैं पहले भी लिख चुकी हूं कि भारत में छापा कला कि शुरुआत ब्रिटिश शासन काल में ही हो गई थी। 1855 के आस-पास से भारत के कला विद्यालयों में उकेरन (एनग्रेविंग) , अम्लांकन (एचिंग) और शिला लेखन (लिथोग्राफी) जैसी विधाएं पढ़ाई जाती रही हैं। छापा कला कि इन विधियों द्वारा आप काफी हद तक चित्रकला के नियमों का पालन करते हुए अपनी भावात्मक कल्पनाओं को साकार कर सकते हैं। प्रकिया जटिल और श्रमयुक्त जरूर है, लेकिन आप मनोवांछित फल पा सकते है।

उत्तर प्रदेश के छापा चित्रकारों की बात करें तो सर्व प्रथम ललित मोहन सेन ने कुछ लिनोकट व काष्ठ छापा में काम किया। इसके बाद जयकृष्ण अग्रवाल ने जो खास्तगीर की प्रेरणा से इस क्षेत्र में आये और लखनऊ के छापा चित्रकला को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। उनके सफल छात्रों में वरिष्ठ काष्ठ छापा चित्रकार श्याम शर्मा, लखनऊ के ही वरिष्ठ चित्रकार और कला समीक्षक अखिलेश निगम (प्रिंटाज के अविष्कारक), आरके सरोज सिंह, सावित्री पाल आदि रहे हैं। इनमें सावित्री पाल की कुछ वर्ष पहले ही मृत्यु हो गई थी और सरोज सिंह को हाल ही में कोरोना वायरस ने हमसे छीन लिया।

सरोज सिंह के छापा चित्र देश के विशेषकर उत्तर प्रदेश और मणिपुर के कला जगत में चर्चा का विषय बने हुए थे। वे एक कर्मठ और व्यवहार में बेहद ईमानदार कलाकार थे। तभी तो सृजन कर्म में अपनी सफलता और ग्राफिक्स कला में अपनी रूचि को बढ़ाने का श्रेय वे देश के वरिष्ठ छापाकार प्रो. सोमनाथ होर, प्रसिद्ध चित्रकार आरएस बिष्ट और जय कृष्ण अग्रवाल को देते थे। सरोज सिंह ने अपनी कला संबंधी शिक्षा 1973 इम्फाल से , 1975 -"1978 तक छत्रपति शाहूजी महराज विश्वविद्यालय, बड़ौदा से और 1983 में लखनऊ विश्वविद्यालय के कला महाविद्यालय से बीएफए किया।

कलाकार की कृतियाँ उसके निर्धारित जीवन मूल्यों और जीवन संघर्ष से ही उत्पन्न होते हैं।

इसके फलस्वरूप उनके कलासृजन में कई दौर (फेज) आते हैं। यह सरोज जी के कामों को देख कर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बड़ौदा में उन्होंने मानव मुखाकृति (भावनात्मक) पर आधारित बहुत सारे लिथोप्रिंट बनाये। पर्वतीय क्षेत्र मणिपुर के होने के कारण सरोज सिंह को प्रकृति से बेहद लगाव था, लखनऊ में उन्होंने बहुत सारे एचिंग प्रिंट निकाले जिसमें प्रकृति का सुन्दर रूपायन है।

अपनी जन्मभूमि इम्फाल जहां प्रकृति के सुरम्य सानिध्य में ही उनका बचपन और युवावस्था गुजरा उनकी स्मृतियों को उन्होंने अपने अंत:करण में जीवित रखा। खासकर वहां की जनजातीय संस्कृति उनके जीवन जीने का अपना ढंग,उन्हें रोमांचित करते रहे।[2]

उन्होंने जनजातीय मातृसत्तात्मक स्त्री प्रधान समाज में मौजूद स्त्री आत्मविश्वास, उनका सौंदर्य, उनमें समाहित ऐंद्रियता और प्रेम पूर्ण भावों को दर्शाते हुए कई लिथोप्रिंट और एचिंग प्रिंट निकाले। 1985 - 87 के दौरान उन्होंने जलीय जीवों खासकर मछलियों पर कई प्रिंट निकाले। जिन्हें काफी पसंद किया गया। इस तरह सरोज सिंह भूमि से जुड़े कलाकार थे, इसलिए उनमें प्रचुर कल्पनाशीलता थी, इसीलिए उनकी कलाकृतियों में मौलिकता की समृद्धि है।

1995 में सरोज जी अंतरराष्ट्रीय लिथोग्राफी कैम्प में शामिल हुए। जो तमरींद इंस्टीट्यूट,न्यू मैक्सिको, (यूएसए) और ललित कला अकादमी नई दिल्ली के तत्वावधान में आयोजित हुआ था । इसमें उन्होंने पशुओं, विशेषकर घोड़ा और पशुकंकालों पर आधारित कई प्रिंट निकाले। इनके बारे में सरोज जी का कहना था, "भारत में रेल यात्रा के दौरान खेतों में पशु अस्थियां बिखरी दिखाई पड़ती हैं, जिसे एक प्रकार से 'पशु अस्थियों की फसल' ही कह सकते हैं, जो मृत्यु उपरांत देह निरर्थकता का बोध कराती हैं।"

मातृभूमि मणिपुर से दूर रहकर भी सरोज वहां से दूर नहीं हुए, तभी तो वे वहां के सामाजिक बदलाव उथल-पुथल आदि पर उनका ध्यान रहा। 1980 से 2000 तक के वर्षों में मणिपुर के सामाजिक, राजनीतिक जीवन में जो परिवर्तन आया था, आम आदमी पर पुलिस का अत्याचार, युवाओं का उच्छृंखल- उन्मुक्त जीवन उन्हें पतन की ओर ले जा रहा था। सरोज के संवेदनशील मन को

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

उद्वेलित करती रही। उनके द्वारा 2006 में एचिंग एक्वाटिंट माध्यम में बनाई गई बड़ी पेंटिंग 'मोन्सटर' (दानव) शीर्षक चित्र में मानव और पशु आकृतियों को विरूपित रूप में अंकन किया गया है। यह प्रिंट राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में चयनित किया गया था।

सरोज जी ने मुख्यतया लिथोग्राफी और एचिंग माध्यम में काम किया है। लिथोग्राफी में विशेष तरह के जमाए हुए शिला पर ऐसिड और रेजिन के प्रतिक्रिया (रियेक्शन) के फलस्वरूप जो प्रभाव उत्पन्न होता है उसे लिथोइंक द्वारा रोलरमशीन के द्वारा कागज पर छापा जाता है। शिला पर रेखाचित्र आदि का अंकन एक विशेष प्रकार के पेंसिल (लिथोस्टीक) से किया जाता है। वहीं एचिंग में जिंक प्लेट पर नाइट्रिक एसिड और रेजिन के प्रतिक्रिया के द्वारा प्रिंटिंग इंक से विशेष प्रकार के कागज पर प्रिंट निकालते हैं।

सरोज जी ने श्वेत-श्याम के अतिरिक्त रंगीन प्रिंट भी बनाए। कला जगत में उनकी कृतियों को लोकप्रियता भी मिली। उनके द्वारा की गयी एकल और समूह प्रदर्शनियों में चित्र सराहे भी गए। प्रसिद्ध कला समीक्षक केशव मल्लिक और कृष्ण नारायण कक्कड़ ने भी इनकी कला पर अपनी लेखनी चलाई । देश- विदेश में इनके छापा चित्र संग्रहित हैं। आरके सरोज सिंह तो नहीं रहे लेकिन उनके परिवार में उनकी पत्नी एक बेटा और एक बेटी है।

कुछ ऐसी भी महिला कलाकार रही हैं, या हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन कला के लिए समर्पित कर दिया है। उन्होंने हमेशा प्रचार, शोर-शराबे और ग्लैमर से दूर नितांत कला या कला लेखन को अपने भावों विचारों और कल्पना की अभिव्यक्ति बनाया। उनके रास्ते की कठिनाइयां उन्हें डिगा नहीं पाईं। ऐसी ही थीं प्रतिभाशाली चित्रकार, कला लेखक, कला संग्राहक और कला मर्मज्ञ सुश्री जया अप्पासामी। वह देश की प्रथम महिला कला लेखक थीं जिन्होंने अपने कला लेखन से प्राचीन भारतीय कला को समृद्ध तो किया ही, साथ ही उन्होंने आधुनिक भारतीय कला के विकास में उत्कृष्ट भूमिका निभायी।

निष्कर्ष

जया अप्पासामी का जन्म चेन्नई (मद्रास) में 31 दिसंबर 1918 में हुआ था। उनकी मां प्रसिद्ध कुमारप्पा परिवार की थीं। वे सुशिक्षित और दयालु महिला थीं। उनके पिता मद्रास न्यायपीठ में न्यायमूर्ति थे। वे काफी प्रगतिशील पिता थे तथा दक्षिण भारतीय सामाजिक परिवेश के विकास में उनका उल्लेखनीय योगदान था। उनका परिवार ईसाई धर्म में विश्वास करने वाला परिवार था। जया के दो भाइयों ने अपना जीवन महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश सेवा के लिए अर्पित कर दिया था। जया अप्पासामी ने अंग्रेजी भाषा में ही लेखन किया है, क्योंकि उनके घर में यही भाषा बोली जाती थी और उनकी शिक्षा भी अंग्रेजी माध्यम में ही हुई थी।

1935 के दशक में विद्यालयीन शिक्षा के बाद जया ने शांति निकेतन में दाखिला लिया। उस समय इंदिरा नेहरू भी वहां पढ़ रहीं थीं। शांति निकेतन में विश्वविद्यालय स्तर की पढ़ाई न होने की वजह जया मद्रास लौट आईं और अपनी माता जी के इच्छानुसार बीएससी की पढ़ाई पूरी की बेहतरीन प्रदर्शन के साथ।

जया का मन रमा था चित्रकला में। अतः उन्होंने 1945 में शांति निकेतन के कला भवन में दाखिला लिया। उस समय कला गुरु नंदलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी और रामकिंकर बैज जैसे महान कलाकार शांति निकेतन की शान थे। उनकी भाषा मुख्य रूप से बांग्ला थी और जया की शिक्षा अंग्रेजी में थी इस वजह से उन्हें काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। वे परिश्रमी और मेधावी थीं इसलिए उन्होंने रविन्द्र साहित्य पढ़ा और बांग्ला भाषा को समझने और पढ़ने में सफलता हासिल की। "उन दिनों वहां सत्यजीत राय, पृथ्वीश नियोगी नंदिता कृपलानी, कमला चौधरी, डॉ. आरएन सेन आदि छात्र-छात्राएं थें। ' जया ' दो चार मित्रों के साथ अपने अध्ययन के विषय पर विचार-विमर्श, आलोचना, प्रतिक्रिया, समीक्षा और अध्ययन करती रहीं'। ---दिनकर कौशिक , समकालीन कला ,अंक- नवंबर 84/मई 85 , पत्रिका , राष्ट्रीय ललित कला अकादमी।[6]

नंदलाल बोस को टेम्परा शैली अत्यंत प्रिय थी। अपने छात्रों को वे टेम्परा शैली में चित्र सृजन के लिए प्रेरित करते। क्योंकि टेंपरा माध्यम में रंग जल्दी सूख जाते हैं। रंगों के समतल सतह पर इच्छानुसार, बारीक, मोटी रेखाएं गतिशील ढंग से चित्र के विषयानुसार अंकित की जा सकती हैं। इस विधि में सुधार की ज्यादा गुंजाइश रहती है। जबकि तैल माध्यम जल्दी सूखता नहीं। गीले रंग पर दूसरा रंग चढ़ाने पर रंग गंदे हो जाते हैं। सबसे बड़ी बात इसमें गतिशील बारीक रेखाएं दिखाना कठिन है। अतः नंदलाल बोस तैल माध्यम को बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। भारत, चीन, जापान आदि एशियाई देशों में टेम्परा चित्रण काफी लोकप्रिय था। जया अप्पासामी के छात्र जीवन के अधिकांश चित्र टेम्परा माध्यम में ही हैं।

1945 में कला भवन से अभिज्ञान -पत्र प्राप्त करने के बाद उन्होंने बनारस के बसंत कन्या महाविद्यालय में शिक्षक पद को सुशोभित किया। परंतु कुछ समय बाद वे चीन के च्यांग-काई- शेक की राष्ट्रीय सरकार द्वारा 1947 में छात्रवृति मिलने के बाद वे चीन चित्रकला सीखने गईं। ' जया के साथ पांच और भारतीय छात्र थे। एक थे चित्रकार निहार रंजन चौधुरी, दूसरे थे भाषा विशारद अमितेन्द्रनाथ टैगोर, तीसरे दर्शन शास्त्री वेंकटरामन, चौथे सतिरंजन सेन और पांचवें संस्कृत-चीनी- भाषाविद् परांजपे। ...इसी समय चीन में गृह युद्ध शुरू हो चुका था। ...इन छह जनों को शेष कुछ दिन अनिश्चितता,परिमित अर्थ और साधन–कृच्छता में बिताने पड़े।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 5.928|

| Volume 4, Issue 9, September 2021 |

|DOI:10.15680/IJMRSET.2021.0409020|

जया इन सभी को मानसिक सहारा देतीं, स्त्री-सुलभ व्यवहार कुशलता दिखाकर..., ...छोटी-मोटी बीमारी के समय सेवा करतीं...। जया ने चीनी भाषा भी सीखना शुरू कर दिया था।- दिनकर कौशिक, साभार-समकालीन कला।

चीन में रहने के दौरान जया ने अपने विनम्र और आत्मीय भरे व्यवहार से वहां के कलाकारों का दिल जीता। उन्होंने ज्यू- पे- यों और और ची -पाय शी जैसे महान कलाकारों के निर्देशन में रेखा प्रधान तुलिका संचालित चित्रण शैली सीखी। इस दौरान के जया के चित्र फूल-पत्तियों और चिड़ियों के चित्रण और चीनी अक्षरांकण कला (चाइनीज कैलिग्राफी) के सुंदर उदाहरण हैं। उन्होंने तीन वर्ष चीन में श्रम साध्य चीनी चित्रकला का अध्ययन और अभ्यास किया। चीनी क्रांति के परिवर्तनकारी माहौल से रूबर होकर, अमेरिका-यूरोप होती हुई भारत आईं। उन्होंने न्यूयॉर्क आदि देशों में अपने चित्रों की प्रदर्शनी भी की थी।

भारत में स्वतंत्रता के बाद कला के क्षेत्र में उलट-पलट का वातावरण आरंभ हो गया था। कलाकारों में होड़ सी लग गई थी आश्रयदाताओं की कृपा दृष्टि पाने की, उपकृत होने की। सीधी-सादी जया निराश ही हो गईं। ऐसे में जयपुर के महारानी महाविद्यालय में उन्होंने प्राध्यापिका के बतौर नियुक्ति मिल गई। परन्तु वहां वे टिक नहीं पाईं।[7]

1953 में दिल्ली पॉलीटेकनिक के विभाग प्रमुख प्रोफेसर भवेश सान्याल के सहयोग से प्राध्यापिका के पद पर आमंत्रित किया गया। दिल्ली में उनके जीवन में स्थायित्व आया। जया अप्पासामी कला समीक्षक के रूप में ख्याति प्राप्त करने लगीं। 'हिन्दुस्तान टाईम्स' में उन्होंने नियमित समीक्षाएं लिखीं।

दिल्ली पॉलिटेकनिक में अध्ययन करने वाले ज्यादातर छात्र कम पढ़े लिखे और सामान्य वर्ग के होते थे। जया उन्हें बड़े धैर्य से सरल भाषा में कला इतिहास समझाया करती थीं। उन्होंने छात्रों को कला तकनीक भी बड़े धैर्य से सिखाई।

जया अप्पासामी शुरुआत में टेम्परा शैली में चित्रण करती रहीं। चीन में प्रवास फलस्वरूप उनका झुकाव जलरंगों की ओर हुआ। परंतु दिल्ली आने पर आधुनिक चित्रकला की ओर उन्मुख हुईं। अब तैल रंग माध्यम उन्हें भाने लगा। उनके चित्रों में एकल महिला के साथ प्रकृति के विभिन्न रूप, पहाड़,नदी, पेड़ों के झुंड,आदि वासंती पीले रंग में,विस्तृत नीला आसमान, चटख लाल और भूरे रंगों वाला पलाश, मौसम में आये बहार को दिखाते हैं।

जया के चित्रों में ज्यादातर एकल महिला आकृति बहुत ही कोमल, रागात्मक या मार्मिक ढंग से उपस्थित रहती हैं जो उनके एकल जीवन का द्योतक हैं।

जया अप्पासामी का कला लेखन अंग्रेजी भाषा में रहा लेकिन बहुत समृद्ध रहा है। "अवनींद्र नाथ टैगोर एंड द आर्ट ऑफ हिज टाईम्स" उनका प्रथम प्रकाशन है, जिसे 1968 में ललित कला अकादमी ने प्रकाशित किया था। दिनकर कौशिक के अनुसार, "भाषा की सरलता,गहरी सूझबूझ एवं अनूभूतिपूर्ण रसग्रहण इस पुस्तक का विशेष गुण है"।

अन्य पुस्तकों में 'माडर्न इंडियन स्कल्पचर' प्रकाशन 1979, इंडियन पेंटिंग्स ऑव ग्लास (1980) उल्लेखनीय हैं। ललित कला अकादमी नई दिल्ली ने उनके महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह 'द क्रिटिकल वीजन' शीर्षक से 1985 में प्रकाशित किया। जिसके संपादक आरके भटनागर थे। वास्तव में जया अप्पासामी महान कला लेखक और चित्रकार थीं।[8]

संदर्भ

1) https://en.wikipedia.org/wiki/Printmaking
2) https://www.mojarto.com/blogs/printmaking-contemporary-indian-artists-transform-imprints-from-communication-to-art-part-i
3) https://www.saffronart.com/sitepages/printmaking/history.aspx
4) https://www.metmuseum.org/about-the-met/curatorial-departments/drawings-and-prints/materials-and-techniques/printmaking
5) कपड़ा छपाई तकनीक का सफ़र (ज्ञानदर्पण)
6) Stork printing machine manufacture
7) Zimmer printing machine manufacture
8) GSE producer of printing paste kitchens and color dispensing systems

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 5.928

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING AND TECHNOLOGY

9710 583 466 | 9710 583 466 | ijmrset@gmail.com

www.ijmrset.com